

## प्राचीन काल से मौर्यकाल तक महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति

Chanda Singh<sup>1</sup>, Dr. Rinku Singh<sup>2</sup>

Department of History

<sup>1,2</sup>Shri Venkateshwara University, Gajaraula (Amroha), U.P. India

### प्रस्तावना

किसी भी समाज व राष्ट्र की स्थिति को वहाँ की नारियों की सामाजिक स्थिति को देखकर आंका जा सकता है। प्राचीन काल में भारतीय समाज गौरवशाली था। उसके निर्माण का श्रेय प्राचीन काल की नारियों को दिया जा सकता है। वैदिक ग्रंथों से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में नारियों को शिक्षा, धर्म, विवाह आदि विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्रता प्राप्त थी व पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। वे स्वतंत्रता पूर्वक पुरुषों के साथ विद्वानों की गोष्ठियों में और दार्शनिक वाद-विवादों में भाग लेती थी। उन्हें हर क्षेत्र में पुरुषों के समान अवसर उपलब्ध थे। मौर्यकाल पर लिखी गई पुस्तकों के अध्ययन से भी ज्ञात होता है कि मौर्यकाल में भी महिलाओं को प्राचीन काल की भांति गौरवशाली व सम्माननीय स्थान प्राप्त था। उन्हें भी शिक्षा प्राप्त करने, यज्ञ करने, ज्ञान प्राप्त करने के समान अवसर प्राप्त थे। वे प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समान भाग लेती थी। उस समय की अर्थव्यवस्था बहुत सुदृढ़ थी और अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में महिलाओं की विशेष भूमिका थी। गृहकार्य से लेकर कृषि, पशुपालन, प्रशासन, यज्ञ कर्म से लेकर आध्यात्म साधना तक के कोई भी क्षेत्र महिलाओं के विषिष्ट व्यक्तित्व, प्रतिभा एवं कौशल की छाप से अछूते नहीं थे। स्त्रियों की सामाजिक एवं आर्थिक दोनों ही स्थितियाँ मजबूत थीं।

### 1. प्रस्तावना

सभ्यता के सृजन के दो "मूल्य क्रम": स्त्री और पुरुष, एक के अभाव में दूसरा अधूरा है। दोनों के परस्पर व्यापी सम्बन्धों से ही जीवन को गति मिलती है। गति ही प्रगति का मूल है। अतः नैसर्गिक रूप से समाज के सर्वांगीण विकास में नारी की भूमिका को अस्वीकार करना सत्य से मुँह मोड़ने के अलावा दूसरा कुछ नहीं कहा जा सकता। चाहे प्राचीन भारत हो अथवा अर्वाचीन भारत।

इस दृष्टि से प्राचीन भारत में नारी की सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों की विवेचना करना अत्यन्त समीचीन प्रतीत होता है। किसी भी मानवीय सभ्यता की परिकल्पना नारी के बिना अधूरी होगी या दूसरे शब्दों में यह कहना असंगत न होगा कि नारी को अभिकेन्द्र से बहिष्कृत करके सभ्यता की परिकल्पना कदापि नहीं की जा सकती। सृष्टि निर्माता ने सृष्टि की रचना के लिए स्त्री एवं पुरुष को एक दूसरे के परिपूरक बनाया इसी के निमित्त प्रकृति ने स्त्री एवं पुरुष के दो भिन्न-भिन्न रूपों का निर्माण किया इन्हीं परस्पर विरोधी गुणों एवं स्वभाव वाले भिन्न-भिन्न प्राकृति के गुणों वाले लोगों का मिलन ही इस सृष्टि का आधार है। नर में कर्म की प्रधानता रहती है तो नारी में भाव पक्ष की प्रधानता होती है। पुरुष कठोरता, सक्रियता, शक्ति एवं शौर्य का प्रतीक है तो नारी कोमलता, मधुरता सुकुमारता की साक्षात् प्रतिमा है। पुरुष समाज के न्याय भावना का प्रतीक है तो नारी दयाभावना की। पुरुष का कर्तव्य शुष्क है तो दूसरी ओर स्त्री का स्वभाव सरस है। पुरुष यदि बल का प्रतीक है तो स्त्री हृदय की प्रेरणा है। पुरुष का जीवन संघर्ष से प्रारम्भ होता है तो नारी का जीवन आत्म-समर्पण से प्रारम्भ होता है।

## 2. महिलाओं की सामाजिक स्थिति :-

### • पुत्री के रूप में महिलाओं की सामाजिक स्थिति :-

वैदिक काल में पुत्री के जन्म पर दुःखी होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है किन्तु सामाजिक वातावरण में पुत्र जन्म की कामना करना स्वभाविक था। अयोग्य पुत्र के स्थान पर योग्य कन्या का जन्म माता-पिता अधिक श्रेष्ठ मानते थे। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि "पुत्र के जन्म से पिता को जो आनन्द मिलता है वहीं आनन्द पुत्री के जन्म से माता को बल्कि उससे भी कहीं अधिक"।

वेदों में एक पंक्ति है- वह पुरुष धन्य है जिसकी कई पुत्रियाँ हैं। पिता पुत्र के समान ही पुत्री के सुख व कल्याण की कामना भी करता था। शुभ अवसरों पर पुत्रियों की उपस्थिति अनिवार्य होती थी। भारत में वैदिक काल से लेकर गुप्त काल तक परिवारों में कन्या का आदर किया जाता था, कन्याएँ परिवार का गौरव मानी जाती थीं।

कन्याओं की शिक्षा का पूर्ण ध्यान रखा जाता था, वे वेदों का अध्ययन करती थीं तथा मन्त्रोच्चारण भी करती थीं। कन्याओं का विवाह युवावस्था में होता था, वे 16 वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रहती थीं, गुरुकुलों में रहकर शिक्षा ग्रहण करती थीं।

कन्याओं के लिए वेदाध्ययन आवश्यक था क्योंकि स्त्रियों को भी नियमित रूप से प्रातः व संध्या काल में वैदिक प्रार्थनाएँ करनी पड़ती थीं। पत्नियाँ यज्ञादि में अपने पति के साथ मन्त्रोच्चारण करती थीं। रामायण में विवरण है कि सीता नियमित रूप से संध्या पाठ करती थी।

अध्ययन के पश्चात् कुछ स्त्रियाँ अध्यापन का कार्य भी करती थीं। शिक्षिकाओं को "उपाध्याया" कहा जाता था। माता-पिता अपनी पुत्रियों को उनके पास शिक्षा ग्रहण करने भेजते थे, किन्तु स्त्री शिक्षिकाओं की संख्या अधिक नहीं थी।

इस काल में लोपामुद्रा, विष्ववारा, घोषा, सिकता, निवावरी आदि विदुषी स्त्रियाँ थीं जिन्होंने वेदों की ऋचाएँ लिखी। साधारण परिवारों की कन्याएँ घर पर ही अपने माता-पिता, भाई आदि से शिक्षा ग्रहण करती थीं। कुछ स्त्रियाँ जैन व बौद्ध धर्म ग्रहण कर भिक्षुणी के रूप में देषाटन करते हुए भी विद्यार्जन करती थीं, स्त्रियों की शिक्षा पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था।

कौषाम्बी के राजा सहस्रानीक की पुत्री जयन्ती ने तीर्थाकर महावीर के धर्म सम्बन्धी तर्कों से संतुष्ट होकर प्रव्रज्याग्रहण की तथा आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करती रही। सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए लंका गई थी।

स्त्री शिक्षा के मुख्य विषय चित्रकला, संगीत, नृत्य, पाक विद्या एवं दार्शनिक थे। सैनिक शिक्षा प्राप्त करना व सैनिक व्यवसाय अपनाने का मार्ग भी स्त्रियों के लिए खुला था। सैनिक व्यवसाय ग्रहण करने वाली स्त्रियाँ अधिकांशतः विदेशी जातियों की होती थीं। मैगस्थनीज ने चन्द्रगुप्त की महिला अंग रक्षिकाओं का उल्लेख किया है।

### • पत्नी के रूप में महिलाओं की सामाजिक स्थिति :

प्राचीन काल से ही भारत में समाज की इकाई कुटुम्ब मानी जाती रही है। यह मान्यता मौर्य काल में भी यथावत् विद्यमान थी। कुटुम्ब का निर्माण विवाह संस्कार पर आधारित माना जाता था। प्राचीन काल तथा मौर्य काल में विवाह संस्था पूर्णतः सुसंगठित तथा शास्त्रों के नियम पर आधारित थी। विवाह के बाद कन्या पत्नी बन जाती है और अपने पति के घर रहने चली जाती है। पति-पत्नी दोनों के कुछ अधिकार एवं कर्तव्य निश्चित हो जाते हैं और दोनों को इनका पालन करना पड़ता है। पत्नी को कुलभूषण मानकर परिवार में उसे श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया।

पति व पत्नी के लिए वेद में दम्पति शब्द आया है जिससे स्पष्ट है कि दोनों समान रूप से घर के स्वामी माने जाते थे, बिना पत्नी के मनुष्य अपूर्ण रहता है। बिना पत्नी के यज्ञ भी अपूर्ण समझा जाता था। पति-पत्नी दोनों मिलकर यज्ञ सम्पन्न करते थे। विवाह के पश्चात् पति गृह आने वाली नववधु को ससुराल में ससुर, सास, ननद, देवर, आदि सभी सदस्यों के हृदय की रानी बनने का आशीर्वाद दिया जाता था। पुत्रवधु को साम्राज्ञी के समान उत्कृष्ट पद प्रदान किया गया था। नारी के बिना घर की कल्पना नहीं की जा सकती थी। घर की एकमात्र अधिष्ठात्री देवी नारी होती थी, यद्यपि परिवार का प्रधान कुटुम्ब का सबसे वयोवृद्ध व्यक्ति होता था, परिवार की सबसे बड़ी स्त्री अपने पति के अधीन होते हुए समस्त कार्यों की संचालिका होती थी। घर के नौकरों और दासों पर पूर्ण अधिकार रखती थी, वृद्ध सास-ससुर, देवर, ननद सभी का वह आदर करती थी। सभी पर उसका नियंत्रण रहता था। पत्नियों गुरुजनों का आदर करती थी, अतिथियों का सत्कार करती थी। महाभारत में पत्नी को पति की प्रसन्नता की कुंजी कहा गया है क्योंकि पुत्र, पुत्रियों, पुत्र वधुओं से घर परिपूर्ण होने पर भी व्यक्ति का जीवन पत्नी के बिना सूना होता है तथा गृहणी विहीन घर वन के समान होता है।

गृह व्यवस्था पत्नी के हाथों सौंप कर सभी कार्यों में उसके विचार लिये जाते थे। परिवार तथा समाज में पत्नी को उच्च स्थान प्राप्त था, बदले में पत्नी से अपेक्षा की जाती थी कि वह गृह कार्य में दक्ष हो, मितव्ययी हो, साथ ही परिवार में स्वच्छता व प्रसन्नता का वातावरण रखे।<sup>1</sup> कालान्तर में पत्नियों को अनेक नियमों एवं बंधनों में जकड़ दिया गया। बहुपत्नी की प्रथा के कारण परिवार में पत्नी का स्थान काफी निम्न हो गया था। पति की तुलना देवता से करना, पति, ससुर आदि से पहले उठना, उनके बाद भोजन ग्रहण करना तथा नीचे आसन पर बैठना सभी पत्नी के कर्तव्य बताए जो पत्नी की कमतर स्थिति को प्रदर्शित करता है। मौर्य युग में स्त्रियों को घर से बाहर जाने की स्वतंत्रता नहीं थी उन्हें प्रायः घर के भीतर ही रहना पड़ता था। पति की इच्छा के विरुद्ध वे कार्य नहीं कर सकती थी। स्त्रियाँ प्रायः घर में ही बन्द रहती थीं। उन्हें यह अनुमति नहीं थी कि वे अपने पड़ोसी, भिक्षुक या सौदागर को अपने घर के भीतर आने दे। कौटिल्य के अनुसार स्त्रियाँ अपनी जातियों के कुल में भी केवल उसी स्थिति में जा सकती थीं जहाँ कोई मृत्यु हो गई हो, या कोई रोगी हो, या उन पर कोई विपत्ति आ गई हो या कोई बच्चा होने वाला हो। तीर्थयात्रा आदि के प्रयोजन से भी स्त्रियों को घर से बाहर जाने की अनुमति प्राप्त थी।

मौर्य युग में भी वैदिक युग के समान पत्नी को समाज व परिवार में उच्च स्थान प्राप्त था, परन्तु विवाहित स्त्रियों को अनेक बन्धनों में रहना पड़ता था। मौर्य युग में स्त्रियाँ प्रायः घर के अन्दर ही रहा करती थीं। पर पुरुषों से मिलना जुलना उनके लिए निषेध था।

#### ● माता के रूप में महिलाओं की सामाजिक स्थिति

भारतीय संस्कृति में माता-पिता को देव तुल्य माना गया है। स्त्री माता के रूप में सदैव वंदनीय रही। महाभारत में माता को गुरु कहा गया है। मनु एवं याज्ञवल्क्य ने माता को गुरु और पिता से श्रेष्ठ कहा है। माता को सभी शास्त्रकारों ने सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। एक पुरुष से संबंधित जितनी भी स्त्रियाँ परिवार में होती हैं उन सब में तो माता का स्थान सबसे ऊँचा है। माता को देवताआ से भी अधिक पूज्य कहा गया है। वषिष्ठ कहते हैं कि माता का आश्रय पाकर ही समस्त प्राणधारी जीवित रहते हैं। माता को प्रसन्न रखना पुत्र का कर्तव्य था और माता की प्रसन्नता के लिए वे हर संभव प्रयास करते थे। अपनी संतान के लिए अनेक प्रकार के कष्ट एवं यातनाएँ सहकर भी माताएँ सुख का अनुभव करती हैं। पति की मृत्यु के पश्चात् संतान का पालन-पोषण करना माता का कर्तव्य था। इसके लिए उसे अनेक कष्ट भी सहने पड़ते थे। माताएँ यथासमय बच्चों को भोजन आदि देने का ध्यान रखती थीं। खजुराहो के मंदिरों में बच्चे कहीं-कहीं अपनी माँ की चुनरी या हार पकड़कर भोजन मांग रहे हैं।

प्राचीनकाल से ही घर बच्चे के लिए पहली पाठशाला है और माता पहली गुरु। माताएँ अपनी संतानों से असीम स्नेह करती हैं। कभी-कभी तो यह मोह इतना बढ़ जाता है कि माताएँ अपने समस्त कर्तव्य विस्मृत कर देती थीं।

माता की आज्ञा पुत्र के लिए सर्वोपरी थी, उसे ध्यान में रखकर ही पुत्र कार्य करते थे। स्वयं को माता का दास मानकर पुत्र माता की आज्ञा का पालन करते थे। माताएँ भी अत्यंत निर्भिकता से अपनी संतान की रक्षा करती थीं। नारी

सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन में पत्नी एवं माता के रूप में पूजनीय रही। माता साक्षात् भगवान् का ही रूप होती है। इसलिए समस्त देवियों को माँ कहकर संबोधित किया गया। "माँ" की कृपा से ही मानव जाति फलती फूलती है।

प्राचीनकाल से ही घर बच्चे के लिए पहली पाठशाला है और माता पहली गुरु। माताएं अपनी संतानों से असीम स्नेह करती है। कभी-कभी तो यह मोह इतना बढ़ जाता है कि माताएं अपने समस्त कर्तव्य विस्मृत कर देती थीं।

### ● विधवा के रूप में महिलाओं की सामाजिक स्थिति

एक नारी के जीवन काल को हम दो भागों में बांट सकते हैं— प्रथम, कौमार्य जिस काल में वह अपने पिता के घर में रहकर शिक्षा ग्रहण करती है तथा विभिन्न कलाओं का ज्ञान प्राप्त करती है। दूसरा, विवाह के उपरान्त प्रारम्भ होता है। इसे भी हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं— प्रथम, "सधवा"। इस रूप में अपने पति के सानिध्य व संरक्षण में रहती हुई जीवन बिताती है। दूसरा रूप "विधवा" का है। इसमें पति की मृत्यु हो जाने के पश्चात् वह पुत्र-पौत्रों व घर के अन्य सदस्यों के संरक्षण में रहकर अपना जीवन व्यतीत करती है।

हिन्दू समाज में विधवा नारी का जीवन अत्यन्त सोचनीय रहा। ऋग्वेद में विधवा शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है। एक स्थान पर वर्णन है कि "मरुत के वग से जिस प्रकार पृथ्वी कांपने लगती है उसी प्रकार पति से विछोह होने (मृत्यु होने) पर स्त्री दुःख अथवा दुर्व्यवहार की आशंका से कांपती है।" इस वर्णन से इतना अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि विधवा के साथ परिवार में दुर्व्यवहार होता था बाद में उस पर अनेक नियम व बंधिषे लाद दी गईं। पति की मृत्यु के पश्चात् एक वर्ष के लिए विधवा को मधु, मांस, मदिरा तथा नमक का त्याग कर भूमि पर शयन करना चाहिए। पति की मृत्यु होते ही नारी का जीवन अत्यन्त कठोर एवं नीरस हो जाता था, उन्हें माता-पिता, भाई, पुत्र, श्वसुर, सास आदि अभिभावकों की अधीनता में रहना उचित बताया गया। विधवा के लिए नियम था कि वे सभी अलंकार त्याग दे, श्वेत वस्त्र धारण करे, कांसे के बर्तन में भोजन करे, अंजन न लगाए, सुगंधित पदार्थों का प्रयोग न करे, क्रोधहीन, जितेन्द्रिय, साध्वी हो। उसे कुषा की चटाई बिछाकर सोना चाहिए आदि अनेक कठोर नियमों का पालन करना पड़ता था। व्रत एवं आत्मसंयम उनका धर्म माना जाने लगा। समाज में नियोग प्रथा प्रचलित थी। यदि विधवा स्त्री के कोई संतान नहीं होती थी, कुछ विधवाएँ पुत्रोत्पत्ति के लिए घर के बड़ों की आज्ञा से देवर से नियोग संबंध स्थापित कर सकती थीं।

समाज में पुनर्विवाह प्रथा प्रचलित थी। अथर्ववेद में उल्लेखित विधवा विवाह से सिद्ध होता है कि समाज में विधवा विवाह प्रचलित था। वह किसी भी व्यक्ति से विवाह कर सकती थी। किन्तु यह भी बन्धन लगा दिया कि परिवार में उपयुक्त व्यक्ति के रहते बाहरी व्यक्ति से विवाह नहीं कर सकती थी। कुछ विधवाएँ जिनका पुत्र होता था, बिना दूसरा विवाह किये पति की स्मृति में सादा जीवन बिताती थीं। उच्च वर्ग की स्त्रियों के लिए विधवा धर्म का पालन अनिवार्य था उन्हें विधवा विवाह के अधिकार से वंचित रखा गया था। पुनर्विवाह की प्रथा तो मौर्य युग में भी प्रचलित थी। स्त्री व पुरुष दोनों को ही पुनर्विवाह का अधिकार था। कुछ विशेष परिस्थितियाँ थीं जिनके अन्तर्गत स्त्रियों को भी पुरुषों के समान पुनर्विवाह का अधिकार दिया गया था।

मौर्य युग में ऐसी विधवाओं की सत्ता थी जो पुनर्विवाह न करके स्वतंत्र रूप से जीवन बिताया करती थीं। ऐसी स्त्रियों को "छन्दवासिनी" स्वतंत्र रूप से रहने वाली विधवा कहा गया। विधवाओं का पालन-पोषण करना कौटुम्बियों का कर्तव्य माना जाता था। विधवाओं को समाज में उन्नत स्थान प्राप्त नहीं था, उन्हें कठोर संयमित व नियंत्रित जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

### 3. महिलाओं की आर्थिक स्थिति :-

#### ● पुत्री के रूप में महिलाओं की आर्थिक स्थिति :-

परिवार में दत्तक पुत्र से पुत्री श्रेष्ठ मानी जाती थी। ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि औरस पुत्र (सगा पुत्र) ने पिता की मृत्यु के उपरान्त अवयस्क बह को पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा नहीं दिया था। एक अन्य श्लोक में उल्लेख मिलता है कि अविवाहित कन्या अपने वृद्ध पिता से अपने "दायाँ" के लिए प्रार्थना कर रही है। पुत्र विहीन परिवारों में पिता की मृत्यु

के उपरान्त सम्पत्ति का पूर्ण अधिकार उस व्यक्ति का लड़की/लड़कियों को मिलता था। महाभारत में भी औरस पुत्र के अभाव में पुत्री को अन्य पुत्रों (गोद लिए) की अपेक्षा उँचा स्थान दिया गया है। आपस्तम्ब ने कन्या को अधिकार तो दिया किन्तु सपिंड दायदा, आचार्य व षिष्य के अभाव में उसे अंतिम अधिकारी माना। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है कि जिस पुरुष के कोई पुत्र न हो उसका द्रव्य (चल सम्पत्ति) सगे भाई, सहजीवी (हिस्सेदार या संयुक्त रूप से धन्धा करने वाले) प्राप्त करें और उसके रिक्थ (अचल सम्पत्ति) को उसकी पुत्री/पुत्रियाँ उत्तराधिकार में प्राप्त करें। पुत्र के अभाव में प्रत्यासन सपिण्ड दायद होता है। उसके अभाव में आचार्य, आचार्य के अभाव में षिष्य उसकी सम्पत्ति धर्म कार्यों में लगाए अथवा कन्या उस सम्पत्ति को प्राप्त करे।

महाभारत में भी कन्या के स्वत्व को पुत्र के समकक्ष स्वीकार किया गया है। यदि किसी पुरुष के केवल कन्याएँ हों तो वे पिता की समग्र सम्पत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त करे। यदि उस पुरुष के पुत्र भी हों तो पिता की सम्पत्ति का आधा भाग पुत्रों को मिले, आधा पुत्रियों को। कौटिल्य भी पुत्री को दायद मानने के पक्ष में थे। उनके अनुसार अभातृ कन्या को उत्तराधिकारिणी घोषित किया गया। अपुत्र का धन उसके सहोदर भाई अथवा सहजीवी कन्याएँ प्राप्त करें। पुत्रवान की सम्पत्ति के अधिकारी धर्म विवाहों से उत्पन्न पुत्र व पुत्रियाँ प्राप्त करें। जो पुत्री परिस्थितिवश अविवाहित रहकर पिता के घर में ही जीवन बिताती थी वह पिता की सम्पत्ति की अधिकारिणी होती थी, क्योंकि अविवाहित होने के कारण उसका पास न तो दहेज के रूप में सम्पत्ति रहती थी न ही पति गृह का स्त्री धन उसके पास होता था। थैरी गाथा से ज्ञात होता है कि यदि पिता संन्यास लेता है और उसका कोई पुत्र न हो तो पुत्री ही सम्पूर्ण सम्पत्ति की स्वामिनी होती थी।

#### ● पत्नी के रूप में महिलाओं की आर्थिक स्थिति :-

वैदिक काल में पत्नी के रूप में नारी को कुछ सीमा तक साम्पत्तिक अधिकार प्राप्त थे। आपस्तम्ब ने कहा कि पति की अनुपस्थिति में पत्नी को गृहस्थ धर्म से सम्बद्ध समस्त व्ययों को करने का अधिकार है।

पत्नी को “पारिणाह्य” अर्थात् घर की वस्तुओं की स्वामिनी स्वीकार किया गया है। शतपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि पत्नी पति के दाय की उत्तराधिकारिणी होती थी। जब याज्ञिक कर्मकाण्ड में पवित्रता का विचार बढ़ जाने से स्त्रियों की धार्मिक स्थिति को जो आघात पहुंचा उससे वैदिक युग के अन्त में हिन्दू नारी के साम्पत्तिक अधिकारों का भी ह्रास हुआ। यज्ञाधिकार के साथ-साथ दायधिकार से भी स्त्रियों को पूर्णतया वंचित किया जाने लगा। तैत्तिरिय संहिता में उल्लेख है कि यज्ञ में नारियों द्वारा दिया गया सोमनिर्वीय (निरिन्द्रय) हो जाता है अतः नारियों को निरिन्द्रय तथा दाय को ग्रहण न करने वाली अर्थात् अदायद माना गया है। इस कथन के आधार पर आगामी शास्त्रकारों ने स्त्रियों को दायद से पूर्णतः वंचित माना और उनके सम्पत्ति के अधिकार समाप्त कर दिये।

कर्मकाण्ड के प्रधान ग्रंथ मीमांसा दर्शन में जैमिनी (500-200 ई.पू.) ने स्त्रियों को दायद प्रमाणित करने का भरसक प्रयत्न किया। विज्ञानेश्वर ने “मिताक्षरा” में स्त्रियों के साम्पत्तिक अधिकारों का व्यापक समर्थन किया। स्त्रियों की परतन्त्रता को दायधिकार से संबंध नहीं माना। उन्होंने स्त्रीधन की विस्तृत व्याख्या कर स्त्रियों को उत्तराधिकार क्रय, विक्रय, बंटवारा सभी प्रकार के अधिकार प्रदान किये। याज्ञवल्क्य स्मृति में पत्नी को पति की सम्पत्ति में अधिकार दिया गया है कि वहां लिखा है कि पुत्र के अभाव में उत्तराधिकार इस क्रम में होगा। पत्नी, कन्या/कन्याएँ, बन्धु-बान्धव, षिष्य-सहपाठी। पुत्र के अभाव में पुरुष की सम्पत्ति पर सर्वप्रथम अधिकार उसकी पत्नी का होगा उसके बाद उसकी कन्याओं का। कात्यायन में पत्नी को पति की “धनहरी” (सम्पत्ति) प्राप्त करने वाली बताकर पति के जीवित न रहने पर पत्नी को सम्पत्ति का अधिकारी प्रतिपादित किया है। बृहस्पति के अनुसार पत्नी पति की अर्द्धांगिनी होती है। अतः पति की मृत्यु हो जाने के पश्चात् भी उसका आधा भाग, पत्नी जीवित है तो अन्य कोई उसकी सम्पत्ति का अधिकारी कैसे हो सकता है। पत्नी को सम्पत्ति विभाजन की मांग करने का अधिकार नहीं था।

#### ● विधवा के रूप में महिलाओं की आर्थिक स्थिति

वैदिक युग से लेकर 200 ई.पू. तक विधवा स्त्री को पति का उत्तराधिकार किसी भी रूप में प्राप्त नहीं था। वैदिक युग में विधवा पुनर्विवाह तथा नियोग प्रथा प्रचलित थी जिसके द्वारा विधवा पुत्र प्राप्त कर सकती थी। अतः समाज में विधवाओं

की संख्या कम थी अतः वैदिक युग में विधवा को सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं बनाया गया। किन्तु विधवा विवाह तथा नियोग प्रथा बन्द होने के पश्चात् याज्ञवल्क्य, विष्णु, वृहस्पति, कात्यायन आदि स्मृतिकारों ने विधवा को दायद माना और उसका प्रबल समर्थन किया। पुत्रों के ना होने पर मृत व्यक्तियों की सम्पत्ति सकुल्यों को मिलती है इनके अभाव में क्रमशः आचार्य, षिष्य, ऋत्विक् या राजा को मिलती है। उत्तराधिकारियों की इस सूची में विधवा का कहीं निर्देश नहीं दिया गया है। कौटिल्य ने भी दायदों के अभाव में राजा को यह अधिकार दिया कि मृत पुरुष का धन, सम्पत्ति का अधिग्रहण कर ले तथा विधवा के जीवन निर्वाह के लिए कुछ धन अवष्य छोड़ दें।

गौतम धर्म सूत्र ने सपिण्डों, गोत्रियों और सम्बन्धियों के साथ विधवा को समान भाग का अधिकारी माना। विष्णु के अनुसार पुत्रों के अयोग्य होने पर सम्पत्ति की उत्तराधिकारी विधवा होती थी। महाभारत काल में पति की मृत्यु के पश्चात् विधवा को पति की सम्पत्ति से दाय भाग प्राप्त होता था। जिन विधवाओं को जीवनयापन के लिए दाय भाग से पर्याप्त सम्पत्ति प्राप्त करना सम्भव नहीं था उनके लिए राजा का यह कर्तव्य बताया गया कि वह विधवाओं के भरण-पोषण की व्यवस्था करे। युद्ध में वीरगति को प्राप्त करने वाले सैनिकों की विधवाओं को राजा पारितोषिक स्वरूप धन देता था तथा उनकी जीविका का प्रबन्ध भी करता था। पति के संरक्षण में रहने वाली पत्नी की अपेक्षा विधवा का स्त्रीधन पर अधिकार होता था। पति के न रहने पर उसे सौदायिक तथा असौदायिक दोनों प्रकार के स्त्रीधन के दान, विक्रय का अधिकार प्राप्त हो जाता था।

### निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध में प्राचीन काल से लेकर मौर्यकाल तक में महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर विस्तृत प्रकाश डालने का प्रयास किया है। कन्या जन्म, बाल-विवाह, बहुपत्नी प्रथा, विधवा पुनर्विवाह, स्त्री पुरुषों की समानता आदि के संबन्ध में अलग-अलग ग्रंथों में दिये गये विभिन्न मतों को समझकर नारी की स्थिति पर यथासम्भव प्रकाश डालने का प्रयास किया है। वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति बहुत उत्कृष्ट थी। यद्यपि कन्या जन्म की अपेक्षा पुत्र जन्म अधिक आह्लादपूर्ण माना जाता था, फिर भी ऐसे लोगों की कमी न थी जो विदुषी, योग्य कन्याएँ पाने के लिए लालायित रहते थे और अपनी पुत्रियों का पुत्रों के समान उपनयन कराके उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करवाते थे। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि इस युग में कन्याएँ अपनी रुचि के अनुसार वर का चुनाव करती थीं।

### सन्दर्भ सूची

- डॉ० रजनी"ा राय प्राचीन भारत में नारियों की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति : एक वि"लेषण, International Journal of Advanced Research and Development, Volume 3; Issue 1, y 2018; Page No. 936-939.
- अर्चना मिश्रा भारत की परम्पराओं रू नारी के सामाजिक स्थिति का पुनरावलोकन, International Journal of Humanities and Social Science Research, Volume 2; Issue 8; August 2016; Page No. 30-36.
- बृजेश कुमार यादव भारत में महिला सशक्तिकरण रू एक विवेचना, International Journal of Multidisciplinary Research and Development, Volume 4; Issue 5; May 2017; Page No. 274-277.
- वाल्मीकी रामायण भाग 1-2 प्रकाशक : गीताप्रेस, गोरखपुर, सम्वत् 2017
- अग्रवाल, वासुदेव शरण : पाणिनि कालीन भारतवर्ष प्रकाशक : बनारस विश्वविद्यालय, 2012
- ओम प्रकाश : प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास प्रकाशक : विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002